**ओ३म्**

**‘सत्य धर्म निर्णयार्थ सभी मत, पन्थ व सम्प्रदायों का अध्ययन व समीक्षा आवश्यक’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 वर्तमान काल में संसार में धार्मिक मत-मतान्तर बड़ी संख्या में प्रचलित है जिनकी ठीक-ठीक गणना करना भी सरल कार्य नहीं है। मुख्य एक मत की कई-कई शाखायें एवं प्रशाखायें भी हैं। मुख्य मत-पंथ-सम्प्रदाय लगभग 6 या 7 ही हैं। इन सभी मतों की कुछ मान्यतायें व सिद्धान्त समान व कुछ पृथक-पृथक हैं एवं उपासना पद्धति सहित अनेक विषयों की इनकी पद्धतियां भी भिन्न-भिन्न हैं। **सभी मतों की भिन्न-भिन्न मान्यताओं व पद्धतियों को क्या एक समान नहीं होना चाहिये?** यदि होना चाहिये तो भिन्न-भिन्न मान्यताओं व पद्धतियों का कारण किया है? महर्षि दयानन्द ने भी इस विषय पर विचार किया था और अनेक मतों व पन्थों के प्रणेताओं ने भी इस पर विचार किया और सभी के अपने-अपने अनुमान व धारणायें इस सम्बन्ध में हो सकती हैं। महर्षि दयानन्द का वेदों व अन्य मत-मतान्तरों का ज्ञान किसी भी मत व सम्प्रदाय के प्रणेता व अनुयायी से कहीं अधिक था। यदि ऐसा न होता तो वह सभी मतों का अध्ययन कर अपना विवेकपूर्ण एक सुस्थिर मत व सिद्धान्त निश्चित न कर पाते। इसलिए उन्होंने सभी मतों का अध्ययन कर घोषणा की कि सत्य मत संसार में केवल एक **‘‘वेद मत”** ही है। इस चुनौती को सत्य व प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए वह किसी भी मत के नेता, विद्वान व अनुयायी से बातचीत, शास्त्र चर्चा व शास्त्रार्थ करने के लिए तत्पर थे और उन्होंने ऐसा किया भी।

 वेद से इतर अन्य सभी मत महाभारत काल के बाद विगत 5,000 वर्षों में अस्तित्व में आये हैं। इसका कारण अज्ञान व तद्जनित अन्धविश्वासों के कारण संसार के अनेक भागों में उत्पन्न सामाजिक जीवन में आई सभी प्रकार की बुराईयों को दूर करना था। **मनुष्य स्वभावतः अल्पज्ञ होता है इस कारण वह सभी विषयों को भली प्रकार से जानकर उन पर निर्भ्रांत व विवेक पूर्वक निर्णय नहीं कर सकता।** इनमें सभी मतों के प्रणेता व प्रवर्तक भी सम्मिलित हैं। इन लोगों के अनेक विषयों के ज्ञान में अनेक प्रकार की कमियां और खामियां होती हैं व रह जाती है जो उस विषय में उनसे अधिक ज्ञानी व जानकार मनुष्यों से समाधान की अपेक्षा रखती है। इसे इस प्रकार से समझ सकते हैं कि आजकल ज्ञान विज्ञान से जुड़े अनेक विषय होते हैं परन्तु एक अध्यापक सभी विषयों को नहीं पढ़ा सकता। सभी विषयों के अलग-अलग अध्यापक होते हैं। फिर सभी विषयों के अलग अलग अध्यापक होने के बावजूद भी उन सभी विषयों के अध्यापकों का अपना-अपना कम व अधिक ज्ञान होता है। यही मुख्य कारण है कि सभी मतों में अज्ञान व अविवेकपूर्ण बातें विद्यमान हैं क्योंकि उनका आधार व्यक्ति विशेष हैं जो कि ईश्वर द्वारा प्रदत्त वेदों अर्थात् सब सत्य विद्याओं के स्रोत से सर्वथा अपरिचित व अनभिज्ञ थे तथा उनके द्वारा प्रवर्तित मत मध्यकाल में उस काल में अस्तित्व में आये जब कि विश्व में नैमित्तिक ज्ञान व विज्ञान अपने शैशव काल में ही था। वर्तमान काल में किसी भी मत का कोई भी प्रवर्तक तो जीवित है नहीं, अतः सभी मतों के वर्तमान शीर्ष विद्वानों द्वारा अपने निजी व सम्प्रदाय विशेष के स्वार्थों को पृथक रखकर निष्पक्ष भाव से संसार के सभी मनुष्यों व प्राणीमात्र के हित व कल्याण में पुनः पुनः विचार कर एक सर्वसम्मत व बहुपक्षीय निर्णय की अपेक्षा है जिससे विश्व में पूर्ण शान्ति का निवास हो। हम आशा करते हैं कि सभी मतों के विज्ञजन व पाठक हमारे विचारों से सहमत होंगे और यही विचार हमें स्वामी दयानन्द जी से भी विरासत में प्राप्त हुए हैं।

 मनुष्यों के स्वभावतः अल्पज्ञ होने के सिद्धान्त को जान लेने पर विज्ञ लोगों को यह बात समझ में आ जाती है कि सभी मतों में जो भी अज्ञानता व अविवेकपूर्ण मान्यतायें, अन्धविश्वास व सिद्धान्त हैं, उसके पीछे मुख्य कारण अज्ञान व अविद्या है। अतः सभी मतों के अनुयायियों को परम्परा से प्रचलित धर्म को स्वीकार करने, आचरण करने व मानने से पूर्व अपने अपने मत का तर्क व युक्तियों को सम्मुख रखकर गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है। इसके बाद यह भी कर्तव्य है कि अन्य सभी इतर मतों का अध्ययन करें और उनमें जो समानतायें एवं विभिन्नतायें हैं उन्हें भी रेखांकित किया जाना चाहिये। सभी मतों में जो समानतायें हैं उन्हें तो सभी मतों के अनुयायियों को स्वीकार कर उनका आचरण बिना किसी पूर्वाग्रह, हठ व दुराग्रह के करना ही चाहिये। अब जो विभिन्नतायें हैं उनको तर्क की तराजु पर तोल कर उनके सत्य व असत्य होने का विचार व समीक्षा करनी चाहिये। यहां यह सिद्धान्त काम करता है कि मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला होता है परन्तु अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह व अविद्या आदि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। ऐसा करना या ऐसा होना एक अच्छे सदाचारी व सत्यवादी ज्ञानी व विद्वान मनुष्य से अपेक्षित नहीं होता। उससे तो यह अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्ष होकर, हठ व दुराग्रह का त्याग कर तथा अविद्या व अज्ञान को दूर हटाकर सत्य, तर्क व युक्ति प्रमाणों से उन विषयों का निर्णय करें और सत्य का ग्रहण व असत्य का त्याग करे।

 सभी मतों में बहुत सी विभिन्नतायें हो सकती हैं। यहां हम दो विषयों को लेते हैं। पहला विषय उपासना पद्धति से सम्बन्धित हैं। सभी मतों में ईश्वर की उपासना करने की भिन्न-भिन्न पद्धतियां हैं। क्या यह सभी ठीक व उचित हैं व सबके परिणाम एक समान होते हैं? यदि सभी सत्य व ठीक हैं तो इनमें परस्पर अन्तर नही होना चाहिये, सभी पूरी तरह से एक समान होनी चाहिये क्योंकि बुद्धिमानों के कार्यों में परस्पर विरोध न होकर समानता होती है। भारत, पाकिस्तान, अमेरिका व चीन में 2 व 2 संख्याओं का जोड़ चार ही होता है। सभी वैज्ञानिक सिद्धान्त भी सभी देशों में पूर्णयता एक समान हैं। अतः इसी प्रकार से हमारी उपासना पद्धतियां भी एक समान ही होनी चाहियें। क्योंकि भिन्न भिन्न धर्मों में ऐसा नहीं है, अतः यह सभी पूर्णतया गलत नहीं तो भिन्नता होने के कारण पूर्णतया ठीक भी नहीं हैं। उपासना का अर्थ है कि ईश्वर के समीप बैठना है। अब यदि ईश्वर एकदेशी हो, एक स्थान विशेष पर रहता हो, सर्वत्र व्यापक व विद्यमान न हो, तो उसकी उपासना हो ही नहीं सकती। मनुष्य द्वारा ईश्वर की उपासना के लिए ईश्वर का सर्वव्यापक अर्थात् सभी जगहों व स्थानों पर विद्यमान होना आवश्यक है। वैदिक धर्म का सिद्धान्त इस तथ्य को स्वीकार करता है जबकि अन्य सभी मत व उनकी पुस्तकें इस मत को स्वीकार नहीं करती। अतः हमारे जो भाई ईश्वर को किसी स्थान विशेष अर्थात् एक स्थान पर होना मानते हैं उन्हें यह बताना चाहिये कि हम जो पूजा वा उपासना कर रहे हैं, वह ईश्वर तक कैसे पहुंच सकती है अर्थात् उसका ईश्वर को ज्ञान किस प्रकार से हो सकता है? हमारी उपासना व प्रार्थनायें ईश्वर तक पहुंचेगी तथा ईश्वर उन्हें पसन्द करेगा तभी तो हमें इच्छित लाभ मिल सकता है। यदि ईश्वर हमसे कोसों दूर है तो फिर हमें लगता है कि हमारा ईश्वर की पूजा व उपासना करना उचित नहीं अपितु व्यर्थ है क्योंकि वह हमारे मनोगत भावों को जान ही नहीं सकता। इसका प्रमाण यह है कि हम जहां होते हैं उससे कुछ ही दूरी पर यदि कोई घटना घट जाती है तो उसका हमें ज्ञान नहीं होता क्योंकि वहां हमारी उपस्थिति नहीं होती। इसलिए घटना के ज्ञान के लिए हमें दूसरे प्रत्यक्षदर्शियों का सहारा लेना होता है और उनके बताने पर हमें जितना उन्होंने बताया, उतना ही ज्ञान होता है। अब ईश्वर यदि एकदेशी होने से हमसे दूर है तो उसे हमारी उपासना व पूजा तथा अच्छे बुरे कर्मों का किसी प्रकार से ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि ब्रह्माण्ड में ईश्वर, जीव व प्रकृति से भिन्न किसी अन्य चैथी सत्ता का अस्तित्व ही नहीं है। इनमें भी चेतन सत्तायें तो केवल दो ही हैं। प्रकृति जड़ होने से न तो कुछ समझ सकती हैं और न किसी को कुछ बता ही सकती है। जीव अल्पज्ञ है, अतः वह किसी भी घटना को देखकर भी उसे पूरी तरह से समझ नहीं सकता। इसके ज्ञान में त्रुटि व कमी का होना सम्भव है। वह अल्पज्ञ होने के साथ काम, क्रोध, इच्छा, राग व द्वेष आदि दुर्गुणों से भी ग्रसित होता है। अतः पूजा व उपासना करने वालों को पहले तो यह स्वीकार करना चाहिये कि ईश्वर किसी स्थान विशेष पर नहीं अपितु वह सर्वव्यापक है। तभी उसकी उपासना व पूजा करना उचित होता होगा। सर्वप्रथम सभी मतों में यह संशोधन अपेक्षित है।

 दूसरा उदाहरण हम यज्ञ को ले सकते हैं। यज्ञ क्या है इसका तात्पर्य देवपूजा, संगतिकरण एवं दान है। देव पूजा का अर्थ विद्वानों का सत्कार, उनसे ज्ञान प्राप्त करना, संगतिकरण का अर्थ भी विद्वानों, धार्मिक व सज्जनों लोगो की संगति है। दान का अर्थ सुपात्रों को धन, उनको आवश्यक साधनों व वस्तुओं का बिना किसी स्वार्थ भावना के उनका अर्पण वा समर्पण है। यज्ञ का एक अन्य अर्थ अग्निहोत्र भी है जिसे करने से प्राण देने वाली वायु शुद्ध होती है व शुद्ध रहती है। यज्ञ कुण्ड में देशी गाय के घृत व ओषधियों, मिष्ट व सुगन्धित पदार्थों तथा पुष्टिकारक द्रव्यों को आहूत करने से वायु शुद्ध होने के साथ उसमें रोगनिवारण की शक्ति भी आती है तथा हानिकारक सूक्ष्म किटाणुओं का नाश होता है। इससे लाभ ही लाभ है, हानि किसी को कुछ भी नहीं। इसे सभी मनुष्यों को धर्म, मत व सम्प्रदाय से ऊपर उठकार जनहित व लोक कल्याण की भावना से करना चाहिये। इसके विरोध में भी किसी मत को कोई आपत्ति नहीं हो सकती परन्तु फिर भी इसे कोई अपनाने को तैयार नहीं है। शायद इसी को दोहरे मापदण्ड कहा जाता है। हम दूर क्यों जायें, आर्य समाज व पौराणिक लोग जिनके लिए सन्ध्या व यज्ञ को प्रातःकाल करने का विधान है, वह सभी भी नहीं करते हैं। यदि करते हैं, तो वह अपवाद स्वरूप ही हैं। ऐसे अनेक विषय हो सकते हैं जिन्हें अनेक मतों के अनुयायियों को आवश्यक समझ कर अपनाना आवश्यक है। यह भी ज्ञातव्य है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान होने सर्वथा प्रमाण योग्य है वहीं अन्य सभी धार्मिक ग्रन्थ मघ्यकाल के अज्ञानान्धकार काल में उत्पन्न हुए हैं जिनमें त्रुटियां व भ्रान्तियां होना स्वाभाविक है। अतः सभी मतों को वेद से तुलना कर अपने मत में बुद्धि, ज्ञान व विज्ञान के आधार पर संशोधन करना चाहिये।

 इस लेख को विस्तार दिया जा सकता है परन्तु हम जो कहना चाहते हैं वह हम बता चुके हैं। हमने स्वयं भी अनेक ग्रन्थों का अध्ययन कर अपना सुधार किया है। अब हम मूर्तिपूजा न कर ईश्वर की उपासना वैदिक विधि से करते हैं। मूर्तिपूजा के स्थान पर हमें माता-पिता-आचार्यों, विद्वान संन्यासियों व वृद्धों की सेवा करना उचित प्रतीत होता है। यही वस्तुतः मूर्तिपूजा है जो हमें हमारे नमस्ते करने व उनसे मधुर वार्तालाप करने पर आशीष देते हैं जिससे हमें सुख शान्ति लाभ होती है। हम सन्ध्योपासना करते हैं जिससे हमारी आत्मा सर्वान्तर्यामी ईश्वर से संयुक्त होकर दोषों का निवारण होकर हमें ज्ञान व शक्ति मिलती है। ईश्वर से प्राप्त इस शक्ति के बारे में आप्त प्रमाण यह है कि इस प्रकार से प्राप्त आत्मबल से मनुष्य पहाड़ के समान दुःख आने पर भी घबराता नहीं है। क्या यह छोटी बात है? महर्षि दयानन्द जी का जीवन इसका साक्षात् उदाहरण है। हम यज्ञ व अग्निहोत्र करते हैं जिससे वायुमण्डल शुद्ध होता है, हमें शुद्ध प्राण वायु मिलती है, रोग दूर होते हैं व अदृष्ट लाभ प्राप्त होने के साथ हमारा परजन्म सुधरता है। हमने मांसाहार छोड़कर शाकाहार का व्रत लिया है। हम अण्डों, पशुओं के मांस, मछलियों आदि से घृणा करते हैं। पशुओं की रक्षा करना और उन्हें सम्मान की भावना से स्मरण करने से हमें सुख की अनुभूति होती है। धूम्रपान, मद्यपान, नशा, व्यभिचार आदि दुर्गुण हमारे हमारे लिए सर्वथा निषिद्ध हैं। इसका प्रभाव हमारी आर्थिक स्थिति व स्वास्थ्य पर भी पड़ा है। हमें ईश्वरोपासना व यज्ञ-अग्निहोत्र करने के साथ शुद्ध शाकाहारी भोजन करना है, गोदुग्ध, गोघृत का सेवन, फलों व साग-सब्जियों का ही सेवन करना है। नियमित सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना है। ऐसा करके, महान पुरूषों के जीवनों का अध्ययन व उनका आचरण कर ही हम अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। इन्हीं पंक्तियों के साथ हम इस लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**